Volume-11, No. 2 Aug.-2024, pp. Hin.01-06

प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा व्यवस्था एवं योग शिक्षा व्यवस्था

डॉ. वीरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी.पी.बी.एस. कालिज अनूपशहर बुलन्दशहर उ.प्र. भारत
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र. भारत।

सार–
प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा एक अर्न्तज्योति के रूप में प्रज्जवलित की गयी थी। जिसका लक्ष्य मानव को उन्नत तथा सुसंस्कृत बनाकर उसके सर्वागीण विकास को सम्भव बनाया था। शारीरिक शिक्षा एक धार्मिक अभियोजन के रूप में ग्रहण की जाती थी, और इसी कारण प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा श्रद्धामूलक मानी गयी, जिसमें प्रेम, ज्ञान, चरित्र–निर्माण जैसे मूल्यों को महत्व दिया गया था, इसकी प्राप्ति के लिए भारत में अनेक गुरूकुल थे जिनमें शिक्षार्थी रहकर योग साधना द्वारा सर्वागीण विकास करता था।

मुख्य शब्द– ईश्वर भक्ति, धार्मिकता, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, चित्त वृत्तियों का निरोध, उपनयन संस्कार

प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का स्वरूप

प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का स्वरूप धार्मिक आध्यात्मिकता प्रधान रहा। विद्यार्थी धर्म के अनुसंधान में लीन रहते थे। ब्रह्चर्य को शारीरिक शिक्षा में प्रमुख स्थान प्राप्त था। ब्रह्मचर्य एक प्रकार से छात्र जीवन का पर्याप था। मोक्ष या मुक्ति का विचार शारीरिक शिक्षा का शाश्वत लक्ष्य था और योग अभ्यास (यम–नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति का अभ्यास कराया जाता था। इस प्रकार व्यक्ति अपने जीवन के महान लक्ष्य को प्राप्ति का अभ्यास कराया जाता था। इस प्रकार व्यक्ति अपने जीवन के महान लक्ष्य को प्राप्त करने में उपायों का संधान करता था ताकि उसे अमरता की प्राप्ति हो सके। इस हेतु योग अभ्यास अपरिहार्य था। सम्यक् आचरण व्यवहार अर्थात् यम–नियम के आधार पर मानव मन तथा शरीर दोनों धरातल पर अपने को पुष्ट करता था और ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता था, जो मन तथा आत्मा से शुद्ध हुए शारीरिक स्तर पर भी विश्व के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हो। इस प्रकार निर्विवाद रूप से कहा जाता है कि प्राचीनकाल की शारीरिक शिक्षा का आधार स्तम्भ ब्रह्माचर्य की शक्ति, योग शारीरिक शिक्षा थी जो सभी विद्यार्थियों को अनिवार्यतः ग्रहण करनी होती थी।

विद्यार्थी जीवन त्याग–तपस्या का जीवन माना जाता था जिसके परिपालन हेतु अत्यधिक आत्मबल और संयम की अपेक्षा होती थी, उसकी पूर्ति योग अभ्यास द्वारा संभव थी। इसी कारण योग को शारीरिक शिक्षा पद्धति का आधार बनाया गया था। क्योकि योग ही वह विधा है या साधना है जिसमें सदाचरण के रूप में यम–नियमों कर परिपालन कराया जाता हैं। यह यम–नियम वस्तुतः और कुछ नहीं संयम का ही दूसरा नाम है। इनके परिपालन से विद्यार्थी का मन शान्त रहता है। वे विषयों में लीन नहीं होते, एकाग्रचित्त से अध्ययन कार्य करते हैं अतः चित्त की चंचलता को रोकने एवं चित्त विश्रान्ति हेतु तथा विषय भोग से निवृत्ति हेतु योग शारीरिक शिक्षा द्वारा यम–नियमों का विधान किया गया।

वस्तुतः यही प्राचीन शारीरिक शिक्षा पद्धति की अपनी मौलिक विशेषता थी जो उसे अन्य सभी शारीरिक शिक्षा पद्धतियों से अलग करती है ओर अधिक मुल्यवान सिद्ध करती है।

शारीरिक शिक्षा संस्थान

शारीरिक शिक्षा संस्थान के रूप में गुरूकुल में स्थापित थे। आश्रम या गुरू घर में शारीरिक शिक्षा प्राप्त होती थी। विद्यार्थी गुरू गृह में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शारीरिक शिक्षा प्राप्त करते थे। इन गुरूकुलों में अध्ययन की सामान्य अवधि 12 वर्ष थी। श्रवण, मनन,

निदिध्यासन शिक्षण की विधियां थी। जिनकी उत्पत्ति मौलिक रूप में योग से ही हुई थी।

योग्य व चरित्रवान व्यक्ति ही शिक्षण देने का कार्य कर सकते थे। शिक्षण प्राचीन पद्धति की एक अन्य प्रमुख विशेषता थी। भिक्षावृत्ति का प्रावधान शिक्षण संस्थाओं को संचालित करने तथा छात्र व शिक्षक के जीविका निर्वाह हेतु किया गया था। इसमें अन्तर्निहित सार था– भिक्षावृत्ति विद्यार्थियों को विनय सिखाती थी। छात्र अनुभूति करते थे कि समाज सेवा और सहानुभूति से ही ज्ञान की प्राप्ति तथा जीविकोपार्जन हो सकता था क्योंकि भिक्षा हेतु व्यक्ति को अपने अंश का त्याग करना पड़ता था। त्याग का यह भाव सेवा, सहानुभूति, दया करूण आदि इसी प्रकार के भावों से युक्त रहता था। कालान्तर में प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा ब्रह्मचर्य, बौद्ध, जैन आदि विविध रूपों में बंट गयी।

डॉ0 जोगेश्वर शर्मा भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते है– "Students in Gurukula got the opportunity of moulding his lief and character after the idealistic pattern of his physical teacher's life by living in close association with him. The close and constant association with the physical teacher in Gurukula made it possible for the student to assimilate all the Noble traits which have traditionally served as the guiding force for the life of his physical teacher as well."

गुरूकुल शारीरिक शिक्षा नीरस, मानसिक न होकर छात्र के अन्दर जिज्ञासा व सत्य शोध की भावना विकसित करती थी। **मि.सी.पी.आर. अय्यर** अपने विचार व्यक्त करते हैं–It would be correct to su that these ancient Hindu schools of learning, which ultimately developed into what might be described as forest universities, perused a mode of physical teaching which was mightier mechanical nor soulless but which generated in the learner a spirit of anxious enquiry and a quest for truth."

प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का महत्व

भारतीय समाज में युगों से शारीरिक शिक्षा के मूल्य को समझा गया और उसको महत्व दिया गया। शिक्षित व्यक्तियों को सदैव से ही समाज में अति विशिष्ट स्थान प्राप्त रहा। व्यक्ति का स्थान विद्वता से निर्धारित होता था, आर्थिक स्थिति से नहीं। विद्या दान देने वाले अर्थात् गुरू को ईश्वर से भी अधिक सम्मान दिया गया।

प्राचीन भारतीय संदर्भ में अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि यहां भी शारीरिक शिक्षा सर्वोच्च शिखर पर सुशोभित थी। सर्वाधिक सम्मान विद्वानो को ही प्राप्त था । यहां तक कि राजतंत्र व्यवस्था में राजा भी विद्वानों को उच्च स्थान देते थे, उनका सम्मान करते थे। प्रायः गुरू शारीरिक शिक्षा जगत के मूर्धन्य विद्वान माने जाते थे।

भर्तृहरि ने शारीरिक शिक्षा के महत्व को स्वर प्रदान करते हुए कहा कि विदेशों में विद्या ही हमारी बन्धुजन होती है। विद्या से ही सबको सम्मान प्राप्त होता है। विद्या ही मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करती है, विद्या के अभाव में मनुष्य पशु के समान होता हैं

गीता विद्या को मुक्ति प्रदान करने का साधन मानती है। विद्या मन, बुद्धि को प्रकाश से आलोकित करती है। विवेक को जागृत करती है। विद्या ही शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास एवं आत्मिक विकास का साधन है। विद्या से ही व्यक्ति संसार में सुख, समृद्धि यश प्राप्त करता है।

शारीरिक शिक्षा का महत्व सिर्फ व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने तक सीमित नहीं था। शारीरिक शिक्षा एव दिव्य शक्ति थी जो व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करती थी। केवल शास्त्रज्ञाता के विद्वान नहीं माना जाता था, विद्वता प्राप्ति हेतु अन्तदृष्टि का विकास आवश्यक थां अन्तदृष्टि का विकास यौगिक क्रियाओं द्वारा होता था।

प्राचीन भारत की ऐसी योग प्रधान शारीरिक शिक्षा की अनूठी परम्परा ने ही भारतीयों की आत्मा, शरीर, विचार तथा मास्तिष्क को शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ एवं उर्वर बनाया।[2]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा का महत्व शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के अतिरिक्त सर्वोपरि आत्मिक विकास में निहित था। इस हेतु योग क्रिया का अभ्यास विद्यार्थियों को प्राणायाम, ध्यान इत्यादि द्वारा कराया जाता था। नैतिक आचरण विकसित करने हेतु

यम– सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, उस्तेय,

नियम– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान आदि यौगिक क्रियाओं का पालन सिखाया जाता था।

प्राचीन शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

प्राचीन काल में धर्म जीवन में प्रमुख स्थान रखता था। जीवन का लक्ष्य आत्मा–परमात्मा का साक्षात्कार करना निर्धारित किया गया था। समस्त कार्यो या कर्त्तव्यों व अधिकारों की व्याख्या तथा आवश्यकताओं का निर्धारण दृष्टिकोण से किया गया था।[3]

अतः प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा भी धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप में संगठित की गयी और इस संगठन का आधार थी योग शारीरिक शिक्षा। जीवन का अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के साधन थे– धारणा, ध्यान, समाधि। ये मोक्ष प्राप्ति के क्रमबद्ध सोपान थे।

डॉ0 मुखर्जी लिखते हैं–"युगों से भारत में शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान–प्राप्ति नहीं था, शारीरिक शिक्षा धर्म का एक अंग थी। शारीरिक शिक्षा जीवन का परम उद्देश्य अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने का एक साधन थी।[4]

प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य आदर्श मानव का निर्माण तथा उसको आत्मिक विकास की ओर प्रवृत्त थे। इन उद्देश्य को निम्न बिन्दुओं के रूप में संगठित किया जा सकता है–

ज्ञान व अनुभव पर बल–प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा में छात्र द्वारा प्राप्त ज्ञान व अनुभव को महत्वपूर्ण माना जाता था। उस काल में आज की शारीरिक शिक्षा व्यवस्था की तरह अंक प्रमाण पत्र या उपाधि पत्र इत्यादि प्रदान नहीं किये जाते थे। योग्यताओं की एकमात्र कसौटी छात्र का ज्ञान था। जिसकी परख के लिये शास्त्रार्थ आयोजित किये जाते थे।[5]

चित्त वृत्तियों का निरोध–प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा चित्त वृत्तियों के निरोध का लक्ष्य रखती थीं इस शारीरिक शिक्षा व्यवस्था में शरीर से अधिक महत्व आत्मा को दिया गया था। आत्मिक उन्नयन हेतु जप–तप और योग को शारीरिक शिक्षा में स्थान दिया गया और विद्यार्थियों को इनका अभ्यास कराया जाता था। आत्मिक उन्न्यन हेतु किये जाने वाले यह क्रियाकलाप जप, तप और योग तभी सफलतापूर्वक किये जा सकते थे, जब चित्त की वृत्तियों का विरोध किया जाये अर्थात् मन पर नियंत्रण रखना सिखाया जाता था ताकि मन चंचल हो इधर–उधर भटके नही बल्कि एकाग्र चित्त से मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य सम्भव हो सके।[6]

ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का समावेश–

विद्यार्थी को यज्ञ, प्रार्थना, संध्या, व्रत, उपवास इत्यादि धार्मिक क्रियाओं से ओत–प्रोत रहता था। धर्म का पालन गुरू–शिष्य दोनों का परम कर्त्तव्य था। छात्र भक्ति प्रधान अभ्यासों द्वारा जीवन के सम्बन्ध में सत्यज्ञान प्राप्त करते थे।

चरित्र निर्माण– आत्मिक विकास सिर्फ धार्मिक क्रियाओं एवं धर्मग्रंथों के पठन–पाठन द्वारा ही सम्भव नहीं। चरित्र निर्माण, आत्म विकास की प्राथमिक आवश्यकता थी। छात्रों को पच्चीस साल की अवस्था तक ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता था। गुरू अपने शिष्यों को सदाचार का उपदेश वाणी व आचरण द्वारा प्रदान करते थे तथा मान पुरूषों के सदाचरण को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। शैक्षिक परिवेश अत्यन्त सादा व पवित्र होता था। छात्र जीवन आत्म नियंत्रण व आत्म संयम का पर्याय होता था। योग द्वारा छात्रों को आत्म संयम सिखाया जाता था।

व्यक्तित्व विकास– छात्रों के व्यक्तित्व में आत्म–सम्मान की भावना, आत्म विश्वास, आत्म त्याग, विवेक, न्याय विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति इत्यादि गुणों को विकसित किया जाता था। प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, व्यायाम आदि योग क्रियायें शारीरिक विकास को पूर्णता प्रदान करती थी। संक्षिप्त में प्राचीन भरतीय योग प्रधान शारीरिक शिक्षा व्यक्तित्व का समन्वित संतुलित रूप विकसित करती थी।

सामाजिक तथा नागरिक कर्त्तव्य पालन की भावना का समावेश–

प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा प्रणाली व्यक्ति विकास पर केन्द्रित होने के साथ ही व्यक्तिगत संकीर्णता से मुक्त होती थी। शारीरिक शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति का सर्वोपरि कर्त्तव्य होता था। समाज से ग्रहण किये गये ज्ञान को समाज–कल्याण हेतु समर्पित कर दे या समाज कल्याण में इस ज्ञान को प्रयोग करें।

भारतीय परम्परा में तीन ऋण माने गये है–गुरू ऋण, पितृ ऋण एवं देव ऋण। इन ऋणों से उऋण होना अनिवार्य था।

शारीरिक शिक्षा छात्र में आत्म त्याग व परहित, परसेवा की भावना जागृत करती थी। गुरू बिना किसी शुल्क के ज्ञान दान करता था। छात्र, गुरू व समाज की सेवा करता था। अतिथि सत्कार तथा दीन दुखियों की सहायता, सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं, नियमों के पालन की भावना, गुरू छात्रों में विकसित करता था। गुरू व शिष्य के ऐसे उच्च आदर्शो की स्थापना तथा मूल्यों की प्रतिष्ठा प्राचीन शारीरिक शिक्षा यह योग प्रधान

शारीरिक शिक्षा ही थी जो छात्रों में उच्च चरित्र, मुल्यों का विकास कर उसे सामाजिक तथा नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति सचेत रखती थी और व्यक्ति बिना किसी कष्ट पीड़ा की अनुभूति किये अपने सभी दायित्वों का निर्वाह सहज, स्वाभाविक रूप से कर लेता था।

सामाजिक कुशलता की उन्नति–

प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा सहयोग व सहकारिता पूर्ण जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती थी। स्वस्थ सामाजिक संबंधो की जननी थी। यही कारण था कि समाज में सुख–शांति थी, समृद्धि व सौहार्द्र का वातावरण था। शारीरिक शिक्षा मानसिक विकास के साथ–साथ, सामाजिक कुशलता को भी विकसित करती थी ताकि वह अपनी जीविकोपार्जन में समर्थ हो सके और सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

भारतीय संस्कृति का संरक्षण व प्रसार– भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन संस्कृति है। इस प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रखने का श्रेय यहां की विशिष्ट शिक्षा प्रणाली को ही है। शारीरिक शिक्षा ही संस्कृति का संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रकीर्णन करती थी। प्राचीन भारतीय साहित्य अलिखित था। शारीरिक शिक्षा ने ही इसको सुरक्षित कर जीवन्त बनाये रखा। आचार्य छात्रों को कंठस्थ कराते थे। प्रत्येक आर्य को वैदिक साहित्य को याद करना होता था। ब्राह्मणों को तो अनिवार्य रूप से वेदों को कंठस्थ करना होता था। ज्ञान सम्वर्द्धन हेतु अनेक प्रकार के धार्मिक साहित्य के साथ–साथ ऋषि मुनियों ने दर्शन साहित्य, विज्ञान, कला के क्षेत्र में मौलिक सृजन प्रस्तुत किया और भरतीय सांस्कृतिक विरासत को अधिक समृद्ध किया। योग स्वय प्राचीन भारतीय ऋषियों की भारतीय संस्कृति को अनुपम देन थी।

विवेक व निर्णायक शक्ति का विकास–प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों की चिन्तन, मनन, तर्कण, स्मृति, कल्पना आदि मानसिक शक्तियों को प्रखर बनाती थी। फलस्वरूप विद्यार्थी में स्वतंत्र निर्णय शक्ति, चयन शक्ति व विवेक शक्ति का विकास होता था।

शारीरिक शिक्षा के यह उद्देश्य होकर एक पूर्ण एकीकृत, संगठित, सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करते थे। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ज्ञान की प्राप्ति अति आवश्यक थी। क्योंकि ज्ञान ही लौकिक व पारलौकिक विकास सम्भव बनाता था। ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति (जीवन के अन्तिम उद्देश्य) का साधन था–"सा विद्या या विमुक्तये।"

भारत की प्राचीन शारीरिक शिक्षा व्यवस्था और उसकी विशेषाएँ

प्राचीन भारतीयों ने शारीरिक शिक्षा की एक विशिष्ट प्रणाली को विकसित किया था।

उपनयन संस्कार–शारीरिक शिक्षा प्राप्ति का अधिकार समस्त आर्यो एवं क्षत्रियों को था। उपनयन संस्कार से शारीरिक शिक्षा का प्रारम्भ होता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ था– विद्या ग्रहण करने हेतु गुरू के पास पहुँचाना। उपनयन एक प्रकार का नवजीवन माना जाता था। गुरू विद्यार्थी को दीक्षा प्रदान करता था। बालक, जिसका उपनयन संस्कार होता था, ज्ञान की देवी सरस्वती की वन्दना करता था और गुरूमंत्र से दीक्षित किया जाता था। वंश, व्यक्तिगत योग्यता, सेवाभाव इत्यादि गुण, चयन के आधार थे।

गुरू शिष्य सम्बन्ध–हमारी प्राचीन शारीरिक शिक्षा प्रणाली की उत्कृष्टता शिक्षकों के उच्च आदर्शो पर आश्रित थी। शिक्षक का व्यक्तित्व उच्चतम आध्यात्मिक व नैतिक गुणों का पर्याय होता था। गुरू वैदिक साहित्य का समर्थ ज्ञानी तथा शिष्यों को आलोकित करने में समर्थ होता था। प्राचीन शारीरिक शिक्षा में गुरू शिष्य का आध्यात्मिक पिता माना जाता था। वे शिष्यों के साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे तथा उनके व्यक्तित्व का विकास कर सुयोग्य नागरिक बनाते थे। गुरू शिष्य की शारीरिक आवश्यकताओं– भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर रखते थे। किसी प्रकार का शुल्क भी नहीं लेते थें। छात्र अध्यापक के घर के एक सदस्य की भातिं होते थे। आचार्य के हृदय में शिष्य के प्रति असीम स्नेह का वात्सल्य रहता था। शिष्य गुरू के प्रति गहन श्रद्धा भक्ति का भाव रखता था।

अल्तेकर महोदय लिखते हैं– "छात्र और अध्यापक के सम्बन्ध पिता और पुत्र के समान थे। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम के द्वारा एक दूसरे से आबद्ध थे।"

इस प्रकार के सम्बन्ध का गूढ़ रहस्य था कि छात्र और अध्यापक का सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से न होकर प्रत्यक्ष था।

पाठ्यक्रम– प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा धार्मिक ज्ञान के साथ–साथ लौकिक ज्ञान भी प्रदान करती थी और इस लक्ष्य की प्राप्ति को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम व्यवस्थित किया गया था अर्थात् पाठ्यक्रम में परा (आध्यात्मिक), विद्या (विद्या) और अपरा (लौकिक) विद्या दोनों

को ही महत्व दिया गया था। पर विद्या में वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद्, ब्रह्मण इत्यादि धार्मिक ग्रंथो का अध्ययन छात्रों को करना होता था। अपरा विद्या के अन्तर्गत लौकिक जीवन हेतु इतिहास, भूगर्भ शास्त्र, भौतिक शास्त्र, गणित, काव्य, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान, मूर्ति कला, वास्तुकला, लौकिक शारीरिक शिक्षा, योग शिक्षा, आयुर्वेद तथा शल्य विज्ञान पाठ्यक्रम में समाहित किये गये थे।

परा विद्या से साहित्य को हृदयागंन करने हेतु व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। शारीरिक शिक्षा का एक अन्य प्रमुख विषय तर्कशास्त्र था, जिसकी प्रायोगिक शारीरिक शिक्षा हेतु शास्त्रार्थ आयोजित होते थे। यह शास्त्रार्थ धार्मिक तथ्यों के सत्य और असत्य को जानने तथा उसका मूल्यांकन करने की वैज्ञानिक विधि थी।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा का पाठ्यक्रम स्वंय में पूर्ण व संतुलित था, जो व्यक्तित्व के समग्र विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखकर संगठित किया गया था।

शिक्षण विधि– प्राचीन शारीरिक शिक्षा पद्धति के चार सोपान प्रचलित थे–

1. स्मरण करना या मौखिक विधि;
2. शास्त्रार्थ;
3. स्पष्टीकरण;
4. सिद्धांत निरूपण।

1. **मौखिक विधि–** लिखित या मुद्रित पाठन सामग्री का अभाव होने के कारण मौखिक शिक्षण विधि अपनायी गयी थी। छात्र गुरू से वेद एवं खेल यंत्र आदि गंन्थों को सुनते थे और उनके उच्चारण का अनुकरण करते थे। गुरू के चरणों में बैठकर शिष्य सस्वर पाठ ऋचाओं इत्यादि का मनन करते थे। ताकि उनके भूल रूप में परिवर्तन न आये और मंत्र तथा ऋचायें मौलिक रूप में सुरक्षित रहें। शुद्ध उच्चारण सिखाने हेतु व्याकरण व स्तर उच्चारण की शारीरिक शिक्षा प्रत्येक छात्र. को अनिवार्यतः दी जाती थी। भारतीय शारीरिक शिक्षा की मौखिक शिक्षण पद्धति की सफलता का अनुपम आदर्श है कि "अनेक युग बीत जाने पर भी वेदों की ऋचायें आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है।"
2. **शास्त्रार्थ–** उच्च ज्ञान की प्राप्ति करने हेतु वाद–विवाद भी शिक्षण विधि के रूप में स्वीकार किया गया था। दूर–दूर से विद्वान निमंत्रण देकर आमंत्रित किये आते थे, शास्त्रार्थ होता था जिसमें धर्म, दर्शन के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन होता था।
3. **स्पष्टीकरण–** शिक्षण विधि के दूसरे सोपान में सूत्रों, भाष्यों एवं टीकाओं के गहन अध्ययन करके वेद मंत्रो का स्पष्टीकरण किया जाता था।
4. **निरूपण–** अन्तिम स्तर पर छात्र मौखिक रूप से अपने सिद्धान्त का निरूपण कर देता था।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण विधि थी चिंतन व मनन। गुरू से प्राप्त ज्ञान पर चिंतन करते थे। चिंतन से ऊपर उठकर मनन को स्वीकृत किया गया था।

अनुशासन–पृथक से अनुशासन स्थापित करने की शारीरिक शिक्षार्थियों में आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गुरू का व्यक्तित्व आदर्श होता था। शिष्य गुरू के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण छात्रों की समस्याओं का तत्काल समाधान हो जाता था। अतः असन्तोष की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती थी।

स्वास्थ्य शारीरिक शिक्षा– प्राचीन शारीरिक शिक्षा पद्धति शरीर और मस्तिष्क के सन्तुलन को महत्व देती थी। छात्रों की दैनिक क्रियायें इस प्रकार निश्चित थी कि शारीरिक अभ्यास के साथ–साथ बौद्धिक क्रियायें भी पर्याप्त मात्रा में अभ्यास में आती थी। मानसिक क्रियाओं के साथ किये गये शारीरिक अभ्यास स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी होते थे।

मानसिक व बौद्धिक विकास– श्रवण, मनन, निदिध्यासन को प्राचीन शारीरिक शिक्षा में स्थान दिया गया था। वह तीनों ही मानसिक व बौद्धिक विकास हेतु आवश्यक है। इस प्रकार प्राचीन शारीरिक शिक्षा प्रणाली मानसिक व बौद्धिक विकास भी करती थी।

नैतिक शारीरिक शिक्षा– नैतिक शारीरिक शिक्षा द्वारा छात्रों को अनुशासित और संयमित रहकर सदाचार का जीवन व्यतीत करना सिखाया जाता था। ब्रह्मचर्य पालन द्वारा छात्र अपने आचार–विचार में सुधार करता था।

प्राचीन भारतीय शारीरिक शिक्षा मे विश्लेषण में हमने देखा कि शारीरिक शिक्षा आदर्शवाद पर आधारित थीं। इसी कारण शारीरिक शिक्षा का मूल्य स्थायी था। शारीरिक शिक्षा जीवन के उद्देश्य से चिर संबंधित थी। बालक का मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास करने में पूर्ण समर्थ था। छात्र जीवन का एकमेव उद्देश्य गुरू से ज्ञान प्राप्त करना एवं गुरू की सेवा करना होता

था। विनय, विनम्रता, अनुशासन, त्याग और परिश्रम की प्रवृत्तियां विद्यार्थी में अनिवार्यतः विकसित हो जाती थी।

निष्कर्ष–निष्कर्ष

1. योग को मानव मात्र के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सामाजिक, विकास हेतु महत्वपूर्ण पाया गया।
2. योग के छात्रों की अध्ययन योजना में शामिल किया जाना आवश्यक पाया गया। योगाभ्यास को शारीरिक शिक्षा के अर्न्तगत दैनिक विद्यालयी कार्यों तथा राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडेट कोर स्काउट गाईड तथा अन्य सह–पाठ्यक्रमीय क्रियाओं के साथ शामिल किया जाना आवश्यक है।
3. योग को एक अतिरिक्त या अलग विषय के रूप में पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना आवश्यक पाया गया।
4. अनौपचारिक शारीरिक शिक्षा के साथ योग को सम्बद्ध किया जाना आवश्यक है।
5. प्राथमिक स्तर पर योग कहानियों और खेल विधि, प्रयोगात्मक द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए।
6. श्वांस नियंत्रण व दैनिक जीवन में इसकी उपयोगिता का एक सामान्य परिचय दिया जाना आवश्यक हो।
7. उच्च स्तर पर (स्नातक) पर्याप्त सुविधायें योग के विविध प्रकार के दार्शनिक एवं व्यावहारिक पक्षों के अभ्यास व अध्यन हेतु प्रदान करना आवश्यक है।
8. योग विभाग अलग से स्थापित होना चाहिए और इसके साथ पर्याप्त उपकरणों से सुसज्जित मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला होनी चाहिए।
9. योग, शारीरिक शिक्षा, अध्यापक शारीरिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. चोपड़ा पी.एन.; दास एम.एन.– भारत का सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक, इतिहास, मैकमिलन प्रकाशन, पृ. 226
2. रस्तोगी, के.जी.– भारतीय शारीरिक शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, पृ. 1–2
3. यजुर्वेद 34/44–युक्तेन मनसा वय् देवस्य सवितुः सवे।
4. कठोपनिषद् 2/3/8 विद्यामेतां योग विधि च कृत्तनम्।
5. योगः चित्त वृत्ति निरोधः। पा0यो0 सूत्र 1/1
6. योगः कर्मसु कौशलम्। गीता, 2/50
7. रस्तोगी, के.जी.– भारतीय शारीरिक शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, पृ. 2
8. मुखर्जी आर. के.– एशियन्ट इंडिया एजूकेशन
9. पाठक, पी.डी.– भारतीय शारीरिक शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुसतक मंदिर, आगरा, पृ. 5
10. मनः प्रकाशमनोपायः योगः इत्यभिधीयते। योग वशिष्ट से
11. एकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानम्। 19/27, तात्वार्थ सूत्र
12. तत्समं च द्वयौरैक्यं जीवात्मापरमात्मनोः प्रणष्टं सर्व संकल्प समाधिः सोऽभिधीयते।
13. पाठक, पी.डी.– भारतीय शारीरिक शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुसतक मंदिर, आगरा, वही, पृ. 6 अल्टेकर, ए0एस0– फिजीकल ऐजूकेशन इन एंशियन्ट इंडिया, नन्दकिशोर ब्रदर्स, वाराणसी, 1916।
14. मजूमदार, वी0 पी0– एन हिस्ट्री ऑफ फिजीकल एजूकेशन इन एंशियन्ट इंडिया, मैकमिलन एण्ड कं0, कलकत्ता, 1916।
15. मुखर्जी, एन0 एन0– हिस्ट्री ऑफ फिजीकल एजूकेशन इन इंडिया, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा, 1961।
16. भानुप्रताप सिंह एवं गीता सिंह– शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य तथा विद्यार्थी जीवनः वैदिक तथा आधुनिक संदर्भ, उच्च शारीरिक शिक्षा पत्रिका, वर्ष 6, अंक 1, वसन्त 1998।